इन्सानियत का मुजस्समा

आयतुल्लाहिलउज़्मा सैय्यिदुलउलमा सै० अली नक़ी नक़वी ताबा सराह

वह खुसूसियत जो किसी इन्सान को बलन्द इन्सानियत की चोटी पर पहुँचाने की ज़िम्मेदार हो सकती हैं, उनकी दो क़िस्में ठहरायी जा सकती हैं। एक भीतरी खुसूसियत दूसरे बाहरी खुसूसियत।

भीतरी खुसूसियतों में इन्सान का हसब और नसब, किसी ख़ास ख़ानदान से ताल्लुक़ रखना, ख़ास बाप-दादा की नस्ल से होना, जो ख़ास गुणों और परम्पराओं को लिए हुए हों, ये एक इन्सान के कमाल की वजह होते हैं।

जाने दीजिये इस उसूल को, जिसे बहुत से लोग आज मान रहे हैं और वह गुण "तवारुसे सिफ़ात" है, यानी नफ़्सानी सिफ़ात भी बतौर विरासत औलाद की तरफ़ मुन्तक़िल होते हैं, और उसका तजुरबा इन्सान तो इन्सान, हैवानों तक में हुआ है, चुनानचे अदना क़िस्म के हैवान को, आला क़िस्म की तरफ़ मुन्तक़िल करने का ज़रिया ये है कि उस नस्ल के ताल्लुक़ाते इज़्देवाजी में तरक़्क़ी का लेहाज़ रखा जाए, अगर बराबर अच्छी नस्ल के अफ़राद इस सिलसिले में आते रहें तो धीरे-धीरे उसकी कमियाँ दूर होकर वह नस्ल आला क़िस्म की हो जायगी। इन्सान भी तबई खुसूसियात के लेहाज़ से जब इस सिलसिले की एक कड़ी है, तो क्यों न इसमें भी ये उसूल दुरुस्त हो, फिर ये अख़लाक़ और औसाफ़े नफ़्सानी भी अक्सर ताब-ए-मिज़ाज होते हैं और ये तिब में भी साबित है कि मिज़ाजी खुसूसियात औलाद की तरफ़ मुन्तक़िल होती हैं, ख़ैर जाने दीजिये इसको, फिर भी ये है कि इन्सान को लाज होती है अपने बाप दादा के तर्ज़, तरीक़े, उसूल और मसलक की, इसका नतीजा ये है कि अक्सर वह ग़लत बातों को छोड़ने पर तैयार नहीं होता, सिर्फ़ इस दलील से कि हमारे बाप-दादा इनके पाबन्द थे। फिर अगर बाप-दादा अच्छी ख़ूबियों वाले हों, तो औलाद को उन ख़ूबियों के साथ मुहब्बत ज़रूर होनी चाहिए, इसका भी नतीजा यही होता है कि एक इन्सान का किसी कामिल ख़ानदान, और बलन्द इन्सानी तबक़े में पैदा होना, उस इन्सान की बलन्दी की एक मुस्तक़िल वजह और सबब है।

बाहरी ख़ूबियों को हम तीन क़िस्मों में लिख सकते हैं।

1- **<u>तालीम और तरबियतः</u>** क्योंकि एक निचले तब्क़े का आदमी भी अगर अच्छी तालीम और तरबियत पा जाए तो कभी-कभी वह बलन्द हो जाता है।

2- **<u>माहौलः</u>** तालीम और तरबियत तो ज़्यादातर इन्सान की ज़िन्दगी के शुरुआती ज़माने से ताल्लुक़ रखती है, लेकिन माहौल ऐसी चीज़ है जो शुरु उम्र से आख़िर तक एक इन्सान के साथ रहता है, और उसकी ज़िन्दगी के हर हिस्से में असरअन्दाज़ होता है।

3- वह ज़माना और तजुरबे और हालात जिन्हें इन्सान ने देखा है, जिनका उससे वास्ता पड़ा है, और ज़िन्दगी के कई ज़मानों में उसे जिनसे गुज़रना पड़ा है, इस हैसियत से इन्सान का कमाल उस वक़्त ज़ाहिर होता है, जब इन्सान को एक-दूसरे के उलटे हालात का मुक़ाबला करना पड़ा हो, और उस वक़्त उसे अलग-अलग तरीक़े इख़्तियार करना पड़े हों। क्योंकि इन्सानी जज़्बात हमेशा एकतरफ़ा होते हैं। अगर एक शख़्स गुस्से वाला है, तो उसे हमेशा गुस्से की बात पर गुस्सा आ जायगा, और गुस्से में वह कुछ न कुछ कर गुज़रेगा। मुमकिन है कि उसका नतीजा कभी-कभी बहुत तारीफ़ करने वाला

हो, जैसे कोई मज़लूम उसे मदद के लिए पुकारे और ज़ालिम की ज़्यादती को देखकर उस शख़्स को गुस्सा आ जाए, उस वक़्त उसके हाथों मज़लूम की मदद होगी, मगर बहुत मुमकिन है कि कभी-कभी उसका गुस्सा ख़राब नतीजे भी पैदा करे, और उसके हाथों फ़ित्ना और फ़साद पैदा हो, और आलमी अम्न को सदमा पहुँचे, ये शख़्स ख़ुद हलाक हो और दूसरे को हलाक करने की वजह बने। ये सिर्फ़ इसलिए कि उसके इक़दामात सब ग़ुस्से के मातहत होते हैं, इसलिए इसके नतीजों में दोरंगी नहीं पैदा हो सकती।

अब देखिये, एक दूसरा शख़्स है, जो फ़ितरतन हलीम और बर्दाश्त करने वाला है। उसका तरीक़ा अक्सर औक़ात में तारीफ़ वाला होता है। एक ऐसे मौक़े पर जब किसी दूसरे को गुस्सा आ जाए, ये ख़ामोशी इख़्तियार कर लेता है, और उसकी ख़ामोशी से एक बड़ा फ़ित्ना ख़त्म हो जाता है। क्या कहना उसकी इस बरमहल ख़ामोशी का! मगर याद रखिये कि ये ख़ामोशी कभी जुर्म बन जायेगी, उस वक़्त जब उस ख़ामोशी से ज़ालिम की हिम्मत बढ़ रही हो, और मज़लूमों का गला कट रहा हो। ये इन्सान अपनी ख़ामोशी से उस वक़्त तारीफ़ के बजाए, बुराई का हक़दार होगा। ये नतीजा है इसका कि उसकी ख़ामोशी तबीअत की कमज़ोरी, और सर्दी का नतीजा थी, इसलिए वह हर हाल में एक रहेगी, और उसमें बदलाव न पैदा होगा।

इन्सानियत का कमाल छुपा है, एक-दूसरे की ज़िद और नयेपन में वही इन्सान जो ग़ुस्से के मौक़े पर बड़ा ही ग़ुस्से वाला मालूम होता है, ख़ामोशी की जगह पर इस तरह ख़ामोश हो जायगा जैसे उसमें ग़ुस्सा पैदा ही नहीं हुआ। ये होगा कामिल इन्सान।

सभी जुर्मों का सरचश्मा नफ़्स के जज़्बात हैं और जज़्बात तबियत के मेल का नतीजा होते हैं, जो एक तरफ से ही होंगे, मगर इन्सानियत नाम है, जज़्बात की मुख़ालेफ़त का, वहाँ जज़्बात, कुव्वते आक़िला के मातहत हो जाते हैं, मुमकिन है कि कभी अमल जज़्ब-ए-नफ़्स के मुताबिक़ हो, मगर वह सिर्फ़ इसलिए कि अक़्ल का फैसला भी उसी के हक़ में है और अगर मौक़े-महल की ज़रूरत इसके ख़िलाफ़ हो तो अमल बदला हुआ और अमल का तरीक़ा अलग-अलग नज़र आयेगा। इसका नाम होगा फ़र्ज़ शिनासी, और यही होगा इन्सानियत का जौहर, और इस जौहर में ज़िन्दगी पैदा होती है, या इसकी ख़ूबियों का इज़हार होता है उन मौक़ों से, जो किसी इन्सान को अलग-अलग शक्ल में पेश आये हों और फिर अलग-अलग तरीक़े से इख़्तियार करना पड़ें।

इस सूरत में उसके हकीमाना सोंच-विचार की बलन्दी, उसके तबई रुजहानात, और नफ़्सानी जज़्बात पर पूरे तौर से साबित होती है, और वह पता देती है इसका कि वह इन्सानियत के कमाल के किस दर्जे पर है।

मैं देखता हूँ तो कर्बला का इन्सान हुसैन[अ०] बिन अली[अ०] इन तमाम ख़ूबियों में बड़े बलन्द नुक़्ते पर नज़र आता है।

पहली वजह क्या थी?

ख़ानदानी ख़ुसूसियतें

हुसैन[अ०] की ख़ानदानी ख़ुसूसियतों का सिलसिला शुरु होता है, हज़रत इब्राहीम ख़लीले ख़ुदा[अ०] से। ये हस्ती बैनुलअक़्वामी हैसियत रखती है। यहूदी, ईसाई और मुसलमान, सब इनको मानते हैं और इस्लाम के सबसे बड़े मूरिस यही हज़रत इब्राहीम[अ०] हैं। इनके दो बेटे थे इस्हाक़[अ०] और इस्माईल[अ०]।

इस्माईल[अ०] की औलाद को ख़ुदा के घर के क़रीब होने की वजह से अरब में इम्तियाज़ी ख़ुसूसियत और मरकिज़यत हासिल हुई। इस्माईल[अ०] की औलाद में नज़्र बिन कनाना की औलाद, क़ुरैश के नाम से जानी गयी। क़ुरैश का इम्तियाज़ अरब के सभी क़बीलों में माना गया, और फिर क़ुरैश में बनी हाशिम को ख़ास ख़ुसूसियत हासिल हुई। बनी हाशिम पूरे क़ुरैश में दीनी और दुनियावी एतेबार से ख़ास अहमियत वाले माने गये, अब्दुल मुत्तलिब को सैय्यिदुल बतहा का लक़ब देकर गोया तमाम हेजाज़ वालों ने उनकी सरदारी और बलन्दी क़बूल कर ली, और उनके बाद उनकी औलाद में ये लक़ब बाक़ी रहा। ये सरदारी न सिर्फ़ दुनियावी मामलों

में थी बल्कि जो मुक़द्दस निशानियाँ थी, उनकी हिफ़ाज़त और हिमायत और ज़िम्मेदारी के सभी फ़राएज़ हाशिम की औलाद से जुड़े रहे, और इसके साथ ख़ुदा का दीन, ख़ुदा का हरम और अल्लाह की निशानियों पर जो कोई मुसीबत पड़ी तो सख़्त वक़्त में यही ख़ानदान काम आया। अब्दुल मुत्तलिब के दो बेटे थेः अब्दुल्लाह और अबूतालिब मगर अब्दुल्लाह का इन्तेक़ाल अब्दुल मुत्तलिब की ज़िन्दगी में हो गया, इस लिये जितनी ज़िम्मेदारियाँ अब्दुल मुत्तलिब से जुड़ी थीं उनकी वफ़ात के बाद अबूतालिब की तरफ़ चली गयीं, अब अबूतालिब इब्राहीम[अ°] की बरकतों के उठाने वाले और इस्माईल की विरासत के वारिस भी, हरम के मुतवल्ली और हिफ़ाज़त करने वाले थे और उस इब्राहीमी मिल्लत के वारिस थे, जिसका नाम था इस्लाम और जिसकी बुनियाद ख़लील[अ°] ने रखी थी।

अब्दुल्लाह के बेटे हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा[स°] थे जो इस्लाम के पैग़म्बर हैं, और आप भी शुरु उम्र से अबूतालिब की परवरिश में रहे, क्योंकि आपके वालिद का इन्तेक़ाल हो चुका था। अबूतालिब[अ°] ने इस ज़िम्मेदारी को जिस तरह पूरा किया है, वह दुनिया की तारीख़ में एक यादगार चीज़ है। उन्होंने अपनी औलाद को रसूले इस्लाम[स°] पर जान लुटाने का सबक़ दिया। उस वक़्त जब शेबे अबी तालिब में घिरे थे, तो इस डर से कि कहीं रात को रसूल[स°] क़त्ल न कर दिये जाएं, अबूतालिब[अ°] आपकी जगह पर अपने बेटों में से एक-एक को बारी-बारी सुला देते थे। और इस तरह जैसे सिखलाते थे कि रसूल[स°] पर कोई वक़्त पड़े इसी तरह जान लुटा देना।

क़ुदरत ने इस अब्दुल्लाह के यतीम और अबूतालिब[अ°] के पाले को ये इ़ज़्ज़त दी कि उसको अपने दीन का लाने वाला बनाया, इस्लाम का कलमा उनकी ज़बान से पहुँचाया। इस पर दुनिया उनकी दुश्मन हो गयी, मगर रसूल[स°] ने इस सिलसिले में हर मुसीबत को बर्दाश्त किया, और इस्लाम की तबलीग़ करते रहे, यहाँ तक कि सब आपके ख़िलाफ़ हो गये, और क़त्ल पर एक हो गये। अबूतालिब[अ°] भी मर चुके थे, जो आपकी हिफ़ाज़त करने वाले थे, मजबूरी में आपको रात के वक़्त मक्का से अलग होना पड़ा, इस मौक़े पर अबूतालिब[अ°] के बेटे अली[अ°] ही की ज़ात थी, जिसे आपने दुश्मनों की तलवारों के घेरे में, अपने बिस्तर पर लिटा दिया था कि जांनिसारी आप बचपन में बाप के कहने से कर चुके थे, और उसे आपने उस यक़ीनी ख़तरे के मौक़े पर अमल करके दिखला दिया कहने दीजिये कि अली[अ°] ने इस ख़तरे में अपने आपको डालकर इस्लाम का फ़िदया बना दिया, ये और बात है कि ख़ुदा ने हिफ़ाज़त की और अली[अ°] की जान सलामत रही।

अल्लाह के रसूल[स°] को ख़ुदा ने एक बेटी दी थी, जिसका नाम फ़ातिमा ज़हरा[स°] था। रसूल[स°] ने अपनी हिजरत के बाद ही इस अपनी बेटी का निकाह अली बिन अबी तालिब[अ°] के साथ कर दिया। इन्हीं से दो बेटे हुए, एक का नाम था हसन[अ°] और दूसरे का नाम हुसैन[अ°]। अब क्या तुम अन्दाज़ा कर सकते हो कि हुसैन[अ°] की निगाह में अपने बाप-दादा की कितनी रिवायतें थीं और वह कौन सा इ़ज़्ज़त और शराफ़त का सिलसिला, सच्चाई और हक़्क़ानियत का सिलसिला, ईमान और रूहानियत का सिलसिला था जिसकी उस वक़्त आख़री कड़ी ये हुसैन[अ°] थे, क्या नसबी मेयार के लेहाज़ से इससे ज़्यादा बलन्दी की इन्सानी कमाल के लिए उम्मीद की जा सकती है?

दूसरी वजह

तालीम और तरबियत

हुसैन[अ°] की तरबियत रसूल[स°] ने की, जो दुनिया के लिए अख़लाक़ के मुअल्लिम थे और ये ज़ाहिर है कि आप पर सबसे पहला फ़र्ज़ अपनी औलाद की तरबियत का होता था। हुसैन[अ°] ने ख़ुल्क़े अज़ीम की आँखें देखीं, ख़ुल्क़े अज़ीम की गोद में रहे, ख़ुल्क़े अज़ीम के हाथों पर पले।

रसूल[स°] अपनी औलाद को उस इस्लाम की हिफ़ाज़त का ज़िम्मेदार बना रहे थे, कि जिसकी वह तालीम और तलक़ीन में लगे हुए थे। इसलिए उनकी तरबियत का ख़ास पहलू ये था कि वह बच्चों को इस्लाम के बारे में उनकी ज़िम्मेदारी का एहसास पैदा कराते रहें। इसके लिए अक़वाल भी थे, और अफ़आल भी थे। अक़वाल में, उनको क़ुरआन का साथ क़रार देना, ये

बताना कि ये कभी एक दूसरे से जुदा न होंगे, और आमाल में उस मौक़े पर कि जब ईसाईयों के साथ मुबाहला हो रहा था, उनको अपने साथ ले जाना। ये समझना, बिल्कुल ग़लत है कि रसूल[स०] की दुआ आमीन की मुहताज थी, मगर एक तरफ तो आप दुनिया को बतला रहे थे कि देखो, अगर हक़ और बातिल का मुक़ाबला हो, तो ख़ालिस हक़ के मुजस्समे ये हैं। दूसरी तरफ़ उनको एहसास पैदा करा रहे थे, कि देखो अगर इस्लाम पर कोई वक़्त पड़े, तो मुझे तुम ही से उम्मीद है। इस वक़्त मैं मौजूद हूँ, मैं खुद तुम्हें ले जा रहा हूँ, और किसी वक़्त मैं मौजूद न हूँगा तो तुम खुद उठ खड़े होना। हुसैन[अ०] के गोश्त और ख़ून को, अपना गोश्त और ख़ून कहा था। इसके माने ये भी हो सकते हैं कि ऐ हुसैन अगर इस्लाम पर कोई वक़्त पड़े तो इस गोश्त को अपना गोश्त और इस ख़ून को अपना ख़ून न समझना। इसे मेरे इस्लाम पर क़ुर्बान कर देना।

ये थी वह तरबियत जो हुसैन[अ०] को हासिल हुई थी।

तीसरी वजह

माहौल

क्या पूछना हुसैन[अ०] के माहौल का। वहि की सदा क़ुरआन की आवाज़ और रसूल[स०] के जेहाद और अली[अ०] के मुजाहिदाना कारनामे।

ये है बचपना। जवानी में बाप को ख़ाना नशीन ज़रूर देखा, मगर ये बराबर नज़र आया कि जब इस्लाम के लिए कोई सख़्त मौक़ा हुआ, कोई अहम मसअला सामने आया, कोई ख़ास मशवरा, फौरन इस्लाम के फ़ायदे के लिए फ़ायदा पहुँचाने को तैयार हो गये। ज़ाती अग़राज़, चाहत नामो नमूद, ज़माने की बेइल्तिफ़ाती का कभी इस मामले में ख़याल न किया। हाथ में तलवार, बाज़ुओं में ताक़त होते हुए, कभी तलवार आज़माने का इरादा न किया, हुक़ूक़ मिटते हुए देखे ख़ामोशी इख़्तियार की, इसलिए कि इस्लाम को नुक़सान न पहुँचे। जब मुसलमानों ने खुद से आकर इक़्तेदार की पेशकश की, और आपको उसे मानना पड़ा, तो देखा कि हक़्क़ानियत की हिफ़ाज़त के लिए और बातिल की हिमायत से अलग रहने के लिए और इस्लामी आईन और उसूल को बाक़ी रखने के लिए, अली[अ०] ने हाकिमे शाम से ज़रा भी नज़र नहीं हटायी, रवादारी, और आसानी को जाएज़ नहीं समझा, हज़ारों मुसीबतें बर्दाश्त कीं, मगर एक मिनट के लिए इसको क़ुबूल नहीं किया कि आप मुआविया की हुकूमत को शाम पर मन्ज़ूर कर लें।

ग़रज़ ये माहौल था, जिसमें हुसैन[अ०] ने ज़िन्दगी के दिन गुज़ारे, हमेशा यही रहा कि उठते बैठते, चलते फिरते, हर बात में इस्लाम का फ़ायदा सामने रखो। हक़ अपना बर्बाद हो कुछ न बोलो, इस्लाम के लिए दुनिया अलग हो जाए, और दूसरे बेजा इक़्तेदार क़ायम कर लें, ख़ामोश रहो, इस्लाम के लिए राहत और आराम में परेशान हो, मगर ये सब इख़्तियार कर लो, इस्लाम के लिए। इस माहौल का क़तई नतीजा ये था कि जान भी जा रही हो, औलाद भी काम आ रही हो, मालो अस्बाब भी लुट रहा हो, तो इस सब को बर्दाश्त कर लो इस्लाम के लिए।

चौथी वजह

वाक़ेआत व तर्जुबात और अलग-अलग हालात में अलग-अलग तरीक़े इख़्तियार करने के मौक़े: इस हैसियत से हुसैन[अ०] को जितने मुख़तलिफ़ ज़मानों से गुज़रना पड़ा, किसी और को न गुज़रना पड़ा होगा।

सात साल की उम्र हुसैन[अ०] ने अपने नाना रसूल[स०] की ज़िन्दगी में गुज़ारी। ये बचपना था, जो बचपने ही के लायक़ राहत आराम दिलजोई और ख़ातिरदारी में गुज़रा। इसके बाद आया अली[अ०] बिन अबी तालिब का ज़माना। हुसैन[अ०] ने देखा, समझा और महसूस किया कि ज़माना बदल गया, डयोढ़ी की रौनक़ सन्नाटे से बदल गयी, जो हर वक़्त के आने जाने वाले लोग थे, अब दूर-दूर तक नज़र नहीं आते, ये भी सुना कि मेरे बाप जिस हक़ को अपना हक़ समझते हैं, उस हक़ पर दूसरों का क़ब्ज़ा है, इस मौक़े पर बच्चों और नौजवानों के जज़्बात अजीब मौजें मारते हैं, फिर हुसैन[अ०] उसी ज़माने में भरपूर जवान हुए, और चौंतीस साल की उम्र तक पहुँचे, क्या कोई कह सकता है कि ये ज़माना

सब्र व सुकून आफ़ियत अन्देशी और अन्जाम बीनी का होता है, और क्या इन्सानी जोश और वलवला इस मौक़े पर मसालेह की बन्दिश आसानी से गवारा कर सकता है, मगर हुसैन[अ॰] को बाप के इख़्तियार किये हुए तरीक़े की पाबन्दी लाज़मी थी। कोई नहीं कह सकता कि उस ज़माने में कोई काम उन्होंने नज़्मो ज़ब्त के ख़िलाफ़ किया हो।

बल्कि उस वक़्त जब तीसरे दौर में ख़लीफ़-ए-वक़्त घिरे हुए थे, और हमला करने वालों ने पानी बन्द कर दिया था, तो हसन[अ॰] और हुसैन[अ॰] को अली बिन अबी तालिब[अ॰] ने पानी पहुँचाने पर लगाया था और कह दिया था कि अगर इस सिलसिले में जंग भी करना पड़े तो कर लेना। बाप के हुक्म की इताअत थी कि हुसैन पानी लेकर गये और पूरी क़ुव्वत से काम लेकर पानी पहुँचा दिया, क्या आम तबई जज़्बात और रुजहानात का तक़ाज़ा यही होता है?

तीसरा दौर वह आया, जब हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ॰] ख़िलाफ़त की गद्दी पर बैठे, अब बग़ावतें शुरु हो गयीं और अली बिन अबी तालिब[अ॰] को जंग करना पड़ी।

इस सिलसिले में जंगे जमल हुई और सिफ़्फ़ीन और नहरवान, उस वक़्त हुसैन[अ॰] जंग के मैदान में तलवार लेकर अपने बाप की मदद में जेहाद में लग गये।

हुसैन[अ॰] की उम्र पैंतीस-छत्तीस साल की है, और बेशक इस उम्र का जोश जेहाद को चाहता है, मगर सिफ़्फ़ीन में क़ुरआन नेज़ों पर बलन्द होते हैं, अलवी फ़ौज में इख़्तेलाफ़ हो जाता है, और अली बिन अबी तालिब[अ॰] मौक़े को देखते हुए जंग टालने का हुक्म देते हैं। लीजिये हुसैन[अ॰] की तलवार भी न्याम में चली जाती है। क्या जवानी की उम्र का जोश आसानी से जंग से हटने पर तैयार होने दे सकता है, एक ऐसे मौक़े पर जबकि जीत बिल्कुल सामने थी, और मालिक अशतर की बहादुरी का जज़्बा, बेचैनी के साथ करवटें बदल रहा था, मगर यहाँ जज़्बात से तो काम न था, फ़र्ज़ का एहसास, हुसैन[अ॰] के सर को झुका देता है। मालूम होता है, अब तलवार में बाढ़ ही नहीं। यहाँ तक कि जंग टालने के मुआहदे पर हसन[अ॰] और हुसैन[अ॰] दोनों गवाह की हैसियत से दस्तख़त करते हैं। उसके बाद अमीरुलमोमिनीन[अ॰] शहीद होते हैं, इमाम हसन[अ॰] जानशीन हुए और अपने बाप के दुश्मन मुआविया से जंग पर तैयार हुए। हुसैन[अ॰] भी भाई के साथ जेहाद पर तैयार हैं। हालात ऐसा पलटा खाते हैं कि इमाम हसन[अ॰] को मुआविया के साथ सुलह की ज़रूरत महसूस होती है। याद रखिये कि ये मौक़ा दूसरा है, बाप की सी बरतरी भाई को आम इन्सानों की निगाह में हासिल नहीं, मगर हुसैन[अ॰] तो अपने भाई को पेश्वा माने हुए थे, हुसैन[अ॰] उसी रास्ते पर हैं जो हसन[अ॰] का रास्ता है हालांकि साथियों में शोरिश है, वह चाहते हैं कि किसी तरह हुसैन[अ॰] जंग पर तैयार हो जाएं।

मगर वह फ़र्ज़ शिनास इन्सान कहता है कि हम ने सुलह कर ली और हम इसके पाबन्द हैं। दस साल हसन[अ॰] की ज़िन्दगी में गुज़ारे जाते हैं, दस साल हसन[अ॰] के बाद गुज़ारे जाते हैं और वही ख़ामोशी का तरीक़ा क़ायम रहता है। वह हुसैन[अ॰] जिसने इसके बाद कर्बला में दिखला दिया कि उसके सीने में कौन सा दिल, और पहलू में कौन सा जिगर है वह इस लम्बे ज़माने में हज़ारों नापसन्द वाक़ेआत के बाद भी ख़ामोश रहता है जैसे उसके सीने में दिल और दिल में हौसला पैदा ही नहीं हुआ।

क्या कम है ये बात कि हसन[अ॰] को ज़हर दे दिया जाए, क्या कम है ये बात कि हसन[अ॰] को रौज़ा-ए-रसूल में दफ़न न होने दिया जाए, क्या कम है कि हसन[अ॰] के जनाज़े पर तीर चलाये जाएं, मगर हुसैन[अ॰] इन तमाम बातों पर ख़ामोश रहें। तलवार न्याम से न निकालें, क्या इससे बढ़कर जज़्बात पर क़ाबू की कोई मिसाल हो सकती है?

लीजिये वह वक़्त आ गया कि यज़ीद तालिबे बैअत हुआ। अब वही ख़ामोश इन्सान ये कहता है कि बैअत तो मैं नहीं करूँगा। ये हुसैन[अ॰] नहीं कह रहे थे, हुसैन[अ॰] के ख़ानदानी ख़ुसूसियात, हुसैन[अ॰] की तालीम व तरबियत, हुसैन[अ॰] का माहौल, और हुसैन[अ॰] का ज़मीर सब एक होकर आवाज़ दे रहे थे कि यज़ीद से बैअत तो न होगी, क्योंकि इस बैअत से इस्लाम ख़त्म हो

जाएगा, इस्लामी शरीअत भुला दी जाएगी और इस्लामी क़ानून में बदलाव हो जाएगा।

कहा "बैअत नहीं करूँगा" और वतन छोड़ दिया, मक्का बसाया। वहाँ सताये गये, उसे छोड़कर निकल खड़े हुए, इराक़ की तरफ चले। फ़ौज आ गयी, रोक लिया, कर्बला में उतर पड़े। चाहते हैं ख़ेमे फ़ुरात पर लगाये जाएं, मुख़ालिफ़ फ़ौज, वही फौज जिसे हुसैन[अ०] अभी पानी पिला चुके थे, वह हुसैन[अ०] का पानी के पास रहना गवारा नहीं करती।

"हमें अमीर का हुक्म है कि आपके ख़ेमे रेती पर लगाये जाएंगे।" अस्हाब बिगड़ते हैं, चाहते हैं कि इस बात पर लड़ें। "नहीं, नहीं, लड़ो नहीं, हम ख़ेमे यहाँ से हटाये लेते हैं, रेती पर ख़ेमे लगा दो।" फ़ौजें आने लगीं दुश्मन ने घेर लिया।

हुसैन[अ०] अम्न व सुलह की कोशिश शुरु करते हैं। अनजान लोग समझते होंगे कि ये दिल की कमज़ोरी का नतीजा है, आज तक यही समझते, अगर आशूर का दिन न आता, और हुसैन[अ०] कर्बला के ज़र्रे-ज़र्रे को अपनी बहादरी, इस्तेक़लाल और बर्दाश्त का गवाह न बना देते।

सुलह की गुफ़्तगू कामयाबी के क़रीब पहुँचती है, मगर इब्ने ज़ियाद उसे ख़त्म कर देता है, "या बैअत या क़त्ल" और हुसैन[अ०] बैअत को पहले ही कह चुके थे, कि नहीं वह अगर जज़्बात की बुनियाद पर फैसला होता, तो शायद अब डर के जज़्बे से बदल जाता, नहीं तो वह हुसैन[अ०] के ज़मीर का फ़ैसला था और दिल व दिमाग़ का समझोता था। इसमें बदलाव की गुन्जाइश न थी।

अब तो बस एक ही सूरत है हुसैन[अ०] का क़त्ल। साथियों से कहते हैं: "चले जाओ, मैं अकेला इस मुहिम को झेल लूँगा।" साथी कहते हैं, "नहीं, हम साथ नहीं छोड़ेंगे।"

"अच्छा तो फिर आओ"

आशूर की सुब्ह, अब तो एक मरने वाले को इन्तिज़ार की ज़रूरत नहीं, मगर वहाँ तो फ़राएज को पूरा किया जा रहा था।

कहीं दुश्मन की जमाअत में कोई अन्जान न हो, कोई हिदायत का प्यासा न हो।

लीजिये हुसैन[अ०] ने दलील भी पूरी कर ली, वह तक़रीर जिसमें अपनी सफ़ाई की दलीलें पेश की थीं, हाँ-हाँ हुसैन की तक़रीर बे असर न थी, हुर समझा और हुसैन की तरफ़ आ गया।

दुश्मन ने तीरों की बौछार करके जंग का एलान भी कर दिया। हुसैन[अ०] क़ुर्बानी के मैदान में हैं। मगर अपनी जान की क़ुर्बानी तो कोई बात न थी, अपने से जुड़े हर फ़र्द को क़ुर्बान कर दिया।

एक भी जब तक बाक़ी रहा, हुसैन[अ०] ने जेहाद का इरादा नहीं किया। मालूम होता है, अब भी नफ़्स का सुकून ख़त्म नहीं हुआ है। अमल के मरहले हैं जो तरतीब के साथ तै हो रहे हैं, कोई घबराहट का क़दम, और बेचैनी का अमल नहीं है। लीजिये, कोई नहीं रहा। वह जो बीस साल तक ख़ामोश रहा, वह जो नौ दिनों तक सुल्ह की नर्म शर्तें पेश करता रहा, वह जो सुब्ह से अब तक दोस्तों और अज़ीज़ों को क़त्ल होते हुए देखता रहा, और तलवार न्याम से न निकाली, अब जब कि कोई नहीं रहा है, जबकि कमर भी टूट चुकी है, आँखों का नूर भी रुख़सत हो चुका है, बेकसी, बेबसी तीन दिन की प्यास और सुबह से इस वक़्त तक की धूप की तेज़ी को बर्दाश्त किये हुए, अब वह जेहाद पर तैयार होता है। वह ख़ामोशी के साथ अपने को दुश्मन के हवाले नहीं कर देता, क्योंकि ये इस्लाम की तालीम के ख़िलाफ़ है। उसे अपनी हिफ़ाज़त के लिए, बचाव करने के लिए जेहाद फ़र्ज़ है, वह तलवार न्याम से खींचता है।

इतनी जंग करता है, जिसे तारीख़ ने खुले अलफ़ाज़ में लिखना ज़रूरी समझा है। आख़िर को क़ुर्बानी पूरी हो जाती है, हुसैन[अ०] दुनिया से चले जाते हैं, मगर उनकी अज़ीम इन्सानियत आज तक आलमे इमकान से कलमा पढ़वाये बिना नहीं रह सकती।

ये था वह इन्सानियत का मुजस्समा जिसकी मिसाल दुनिया की तारीख़ में मिलना मुश्किल है।

✦✦✦